स्वाधीन भारत में न्यायालयिक विज्ञान का विकास

डॉ. आर.बी. सिंह

पृष्ठभूमि

मानव विकास के इतिहास में सभ्यता एवं अपराध को अलग-अलग देखना अत्यन्त कठिन है। मनुष्य के सभ्य होते ही अपराध परिभाषित हो गये एवं अपराध की विवेचना तथा दण्ड का प्रावधान सभ्य समाज के अभिन्न अंग बन गए। आदिकालीन मानव जंगली अवश्य था किन्तु स्वतंत्र, स्वच्छन्द एवं निर्द्वन्द था। समाज में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिए विवादों का हल एवं अपराधों की विवेचना अपरिहार्य है। यह कार्य हमेशा समाज के समर्थ एवं बलवान वर्ग के कन्धों पर रहा है, चाहे वे धर्म-गुरु हों, ग्राम प्रमुख हों, जमींदार हों, शासक हों, अथवा सरकार। विवादों को सुलझाने अथवा अपराधों की जाँच में अनुभव पोषित सामान्य ज्ञान का उपयोग आरम्भ से ही होता आ रहा है। जैसे-जैसे मानवीय ज्ञान का विकास हुआ, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विकसित हुई, इनका उपयोग विभिन्न सामाजिक कार्यों हेतु व्यवस्थित रूप से होने लगा। आपराधिक न्याय व्यवस्था का भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से प्रभावित होना स्वाभाविक था। प्रसंगवश विज्ञान के क्षेत्र में बहुमूल्य खोज 'आर्कीमिडीज के सिद्धान्त' का वृतान्त बरबस ही याद आ जाता है। राजमुकुट में प्रयुक्त सोने की शुद्धता राजदरबार में विवादित थी। राजमुकुट को किसी भी प्रकार की क्षति पहुंचाये बिना धातु की शुद्धता ज्ञात करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। उक्त समस्या के समाधान के प्रयास में आर्कीमिडीज को वस्तुओं के तैरने के सिद्धान्त का पता लगा। इस प्रकार अपराध अन्वेषण एवं विज्ञान का सम्बन्ध अत्यन्त गहरा एवं पुराना है। जैसे-जैसे विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में विकास होता गया राजदरबारों एवं न्यायालयों में विवादास्पद मामलों के सुलझाने में विज्ञान का उपयोग बढ़ता गया।

आपराधिक न्याय व्यवस्था में पहले आयुर्विज्ञान का उपयोग अधिक प्रचलित हुआ एवं 'फारैन्सिक मेडिसिन' एक अलग विषय के रूप में विकसित हुई। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की विभिन्न शाखाओं का भी उत्तरोत्तर उपयोग अपराध अनुसंधान में होने लगा एवं कालान्तर में 'फारैन्सिक साइंस' का भी अलग अस्तित्व बना। 'फारैन्सिक' शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'फोरम' से हुई है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है न्यायालय से सम्बन्धित। फारैन्सिक साइंस या न्यायालयिक विज्ञान की परिभाषा के तौर पर यह कहा जा सकता है कि न्यायालयों में विवादास्पद या संदेहात्मक बिन्दुओं के स्पष्टीकरण हेतु प्रयुक्त विज्ञान या प्रौद्योगिकी को न्यायालयिक विज्ञान कहते हैं। यह एक बहुविषयी प्रयुक्त शास्त्र है। देश में फारैन्सिक साइंस के कई रूपान्तर प्रचलित हैं जैसे- न्यायालयिक विज्ञान, विधि विज्ञान, न्याय वैधक विज्ञान, न्याय सहायक विज्ञान, इत्यादि। अपराध स्थलों से प्राप्त भौतिक सूत्रों के प्रारम्भिक परीक्षण एवं अपराध अन्वेषण हेतु दिशा निर्देश के लिए भी कालान्तर में न्यायालयिक विज्ञान का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार आज न्यायालयिक विज्ञान का क्षेत्र अपराध-स्थल से लेकर न्यायालय तक विस्तृत हो चुका है।

यूँ तो भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में अपराध अन्वेषण हेतु विज्ञान के प्रयोग का उल्लेख है एवं चीन के एक डाक्टर द्वारा छठीं शताब्दी में न्यायालयिक आयुर्विज्ञान पर निबन्ध लिखा जाना बताया जाता है, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से आपराधिक मामलों की जाँच में रसायन विज्ञान का उपयोग अधिकाधिक होने लगा था। भारतवर्ष में भी वर्ष 1850 से 1870 के बीच कलकत्ता, मद्रास, आगरा एवम् बम्बई में रासायनिक परीक्षक प्रयोगशालाएं (कैमिकल एक्जामिनर्स लेबोरेट्रीज) स्थापित की गई। इन प्रयोगशालाओं में विष एवं अन्य प्रकार के रसायनों का परीक्षण किया जाता था, तथा रक्त के धब्बों एवं अन्य रासायनिक धब्बों का भी परीक्षण होता था। रक्त के धब्बों के स्रोत निर्धारण एवं वर्गीकरण आदि के लिए 'सीरोलॉजिस्ट एण्ड कैमिकल एक्जामिनर टू गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया की प्रयोगशाला की स्थापना वर्ष 1910 में कलकत्ता में की गयी। इस बीच विवादास्पद प्रलेखों के सरकारी परीक्षक (गवर्नमेन्ट एक्जामिनर ऑफ क्वेशचन्ड डाकूमेन्ट्स) की प्रयोगशाला भारत सरकार द्वारा शिमला में वर्ष 1906 में स्थापित की गई। प्रथम पुलिस कमीशन (1901) की संस्तुतियों के कार्यान्वयन के फलस्वरूप विभिन्न प्रदेशों में अपराध अनुसंधान विभाग की स्थापना की गयी एवं कालान्तर में अपराध अनुसंधान विभाग के अधीन वैज्ञानिक शाखा (साइंटिफिक सैक्शन) स्थापित की गयी। इनमें फोटोग्राफी, आग्नेयास्त्र, प्रलेख, फिंगरप्रिन्ट एवं अन्य प्रकीर्ण प्रकार के प्रदर्शों का परीक्षण किया जाता था। इस प्रकार विभिन्न प्रकृति के प्रदर्शों के परीक्षण हेतु अलग-अलग संस्थाएं थीं।

न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाएं

देश में सर्वांगपूर्ण न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं की स्थापना का प्रयास बीसवीं सदी के मध्य में आरम्भ हुआ। इस प्रकार का प्रथम प्रयास संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) में वर्ष 1945 में किया गया था, किन्तु विभिन्न कारणोंवश उक्त प्रयास सफल नहीं हुआ।

स्वाधीन भारत में राष्ट्रीय स्तर पर

न्यायालयिक विज्ञान के समग्र विकास के प्रथम प्रयास का श्रेय तत्कालीन गृहमंत्री डॉ0 कैलाश नाथ काटजू को जाता है। तत्समय अपराध अनुसंधान में मनगढ़न्त साक्ष्यों के प्रयोग, एवं कमजोर साक्ष्यों को अनावश्यक रूप से विस्तार कर सुदृढ़ करने की प्रक्रिया तथा जाँच अधिकारियों का संदिग्ध अपराधियों के साथ उग्र एवं अशिष्ट व्यवहार आदि से डाक्टर काटजू अत्यन्त चिन्तित थे। वे चाहते थे कि अपराध अनुसंधान हेतु विकसित देशों की भाँति वैज्ञानिक एवं नई विधियों का प्रयोग किया जाय। उन दिनों गृहमंत्रालय के लिए पुलिस से सम्बन्धित सभी कार्य निदेशक, इन्टैलीजेन्स ब्यूरो द्वारा किया जाता था अतः अपराध अनुसंधान की नई विधियों के प्रयोग का प्रस्ताव बनाने का कार्य इन्टैलीजेन्स ब्यूरो के तत्कालीन निदेशक श्री बी.एन.मलिक को सौंपा गया, जिन्होंने विकसित देशों में अपराध अनुसंधान हेतु प्रचलित नई विधियों का अध्ययन कर व्यापक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। वर्ष 1954 में पुलिस महानिरीक्षकों के सम्मेलन में सैन्ट्रल फारैन्सिक साइंस लेबोरेट्री, सैन्ट्रल फिंगर प्रिन्ट ब्यूरों और सैन्ट्रल डिटैक्टिव ट्रेनिंग स्कूल स्थापित करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया गया था। यह संस्थाएं वर्ष 1955 से 1957 के बीच कलकत्ता में स्थापित की गई। वहाँ पर बाद में गवर्मेन्ट इक्जामिनर ऑफ क्वेशचन्ड डाकूमेन्ट्स की भी एक नई प्रयोगशाला वर्ष 1965 में स्थापित की गई। भूतपूर्व गृहमंत्री स्वर्गीय पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त ने भी अपराधों की वैज्ञानिक विवेचना में काफी रुचि ली। केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों के अधीन न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना की योजना के कार्यान्वयन हेतु सैन्ट्रल फारैन्सिक सांइस एडवाइजरी कमेटी का गठन किया गया। विश्वविद्यालयों में अपराध शास्त्र एवं न्यायालयिक विज्ञान का पाठ्यक्रम आरम्भ कराने के बारे में भी उनकी विशेष रुचि थी। वे चाहते थे कि मजिस्ट्रेट एवं न्यायाधीश तथा अधिवक्ताओं को भी इन विषयों की जानकारी हो। सर्वप्रथम सागर विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर 1959 में अपराध शास्त्र एवं न्यायालयिक विज्ञान सम्बन्धी शिक्षा आरम्भ की गयी। इस प्रकार बीसवीं सदी के छठे दशक में भारत सरकार द्वारा न्यायालयिक विज्ञान के विकास के लिए काफी प्रयास किये गये। इन प्रयासों के फलस्वरूप देश के विभिन्न राज्यों में न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाएं स्थापित की गई। प्रथम सर्वांगपूर्ण न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला कलकत्ता में वर्ष 1952 में वहाँ की रासायनिक परीक्षक प्रयोगशाला को विकसित कर स्थापित की गई। तत्पश्चात् महाराष्ट्र (1958), तमिलनाडु (1959), बिहार (1964), जम्मू-कश्मीर (1964), मध्य प्रदेश (1964), आसाम (1964), केरल (1968), उड़ीसा (1968), कर्नाटक (1968), उत्तर प्रदेश (1969), राजस्थान (1971), हरियाणा (1973), गुजरात (1974), आन्ध्र प्रदेश (1974), पंजाब (1981), मेघालय (1989), मनीपुर (1989), हिमाचल प्रदेश (1989) एवं दिल्ली (1993) में न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं की स्थापना हुई।

आज लगभग सभी राज्यों में कम से कम एक-एक प्रयोगशालाएं स्थापित हैं। अधिकतर स्थानों पर तत्कालीन वैज्ञानिक शाखा, अपराध अनुसंधान विभाग अथवा रासायनिक परीक्षक प्रयोगशालाओं को विकसित कर सर्वांगपूर्ण न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाएं स्थापित की गई। कुछ राज्यों जैसे महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान में एक से अधिक प्रयोगशालाएं स्थापित हैं। केन्द्रीय सरकार की दो और न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाएं वर्ष 1967 में हैदराबाद में एवं वर्ष 1968 में नई दिल्ली में स्थापित की गई। दिल्ली में स्थापित प्रयोगशाला मुख्यतः सैन्ट्रल ब्यूरो ऑफ इन्वैस्टीगेशन से सम्बन्धित मामलों के परीक्षण के लिए थी किन्तु इस प्रयोगशाला में दिल्ली पुलिस एवं अन्य सरकारी विभागों के मामले भी संदर्भित किये जाते थे। गवर्नमेंट एक्जामिनर ऑफ क्वेशचन्ड डाकूमेन्ट्स की एक और नई प्रयोगशाला हैदराबाद में सन् 1969 में स्थापित की गई।

भारतीय पुलिस कमीशन एवं राज्य कमीशनों द्वारा समय-समय पर न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं के सुदृढीकरण एवं अपराध अनुसंधान में वैज्ञानिक संसाधनो के प्रयोग के बारे में संस्तुतियाँ की गई। देश में न्यायालयिक विज्ञान के विकास में इन संस्तुतियों का भी काफी योगदान रहा। वर्ष 1970 में एडवाइजरी कमेटी की एक सर्वे सबकमेटी का भी गठन किया गया था। उक्त सबकमेटी ने देश के प्रत्येक राज्य में स्थापित न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला में जाकर प्रयोगशाला की ढाँचा, जनशक्ति, कार्यभार, उपलब्ध उपकरण आदि संसाधनों का अध्ययन किया। तद्नुसार उन प्रयोगशालाओं के सर्वमुखी विकास के बारे में सम्बन्धित राज्य सरकार को सुझाव दिये गये। इस प्रयास से प्रत्येक राज्य की प्रयोगशाला की वास्तविक प्रगति का ज्ञान हुआ एवम् इस प्रकार प्रयोगशालाओं के विकास के बारे में अग्रिम कार्यवाही का मार्ग प्रशस्त हुआ।

पुलिस से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन, पुलिस कार्य में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रयोग, पुलिस प्रशिक्षण, न्यायालयिक विज्ञान का विकास आदि के लिए भारत सरकार के गृहमंत्रालय में पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो नई दिल्ली में वर्ष 1970 में स्थापित किया गया। तत्पश्चात केन्द्रीय न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाएं (सी. बी.आई. की प्रयागशाला को छोड़कर) एवं प्रश्नास्पद प्रलेखों के सरकारी परीक्षक की प्रयोगशालाएं इन्टैलीजेन्स ब्यूरो से स्थानान्तरित कर इस विभाग के अधीन कर दी गई। केन्द्र शासित प्रदेश चण्डीगढ की प्रयोगशाला भी पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो के अधीन कर दी गई।

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा 1971 से न्यायालयिक विज्ञान में शोध कार्य हेतु स्नातकोत्तर छात्रवृत्ति देना प्रारम्भ किया गया। देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों एवं न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक इन छात्रवृत्तियों से न्यायालयिक विज्ञान के विषयों पर शोध कार्य करते हैं। वर्ष 1972 में सैन्ट्रल फारैन्सिक साइंस एडवाइजरी कमेटी का पुनर्गठन पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो के अधीन "स्टैण्डिंग कमेटी ऑन फारैन्सिक सांइस" के रूप में किया गया। देश में विधि विज्ञान की प्रगति का मूल्यांकन एव आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान करना इस कमेटी का मुख्य उद्देश्य है।

वर्ष 1982 में स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्रीमती गाँधी की पहल पर "साइंटिफिक एडवाइजरी कमेटी टू द कैबीनेट" द्वारा न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं के बारे में अध्ययन कर उनसे विकास हेतु संस्तुति करने के लिए एक एक्सपर्ट ग्रुप का गठन किया गया। विभिन्न कारणोंवश इस ग्रुप की रिपोर्ट में की गई संस्तुतियो का कार्यान्वयन पूरी तरह नहीं हो सका।

वर्ष 1969 से राज्य पुलिस बलों के

आधुनिकीकरण हेतु भारत सरकार द्वारा अनुदान देने की योजना में राज्यों को स्वीकृत अनुदान का कुछ हिस्सा न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला के आधुनिकीकरण एवं सुदृढ़ीकरण हेतु व्यय किया जाना अपेक्षित था। इस योजना में वर्ष प्रति वर्ष राज्य की न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं को भवन निर्माण एवं आधुनिक उपकरण के क्रय हेतु अनुदान मिलते रहे। इस प्रकार राज्य की प्रयोगशालाएं काफी विकसित हुई। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उक्त अनुदान सैन्ट्रल फारैन्सिक सांइस लेबोरेट्री के लिए उपलब्ध नहीं था। अतः उनका विकास काफी दिनों तक बाधित रहा। योजना आयोग द्वारा आठवीं पंचवर्षीय योजना में न्यायालयिक विज्ञान को योजनागत मदों में सम्मिलित करने के उपरान्त सैन्ट्रल फारैन्सिक सांइस लेबोरेट्री/गवर्नमेन्ट एक्जामिनर ऑफ क्वैशचन्ड डाकूमेन्ट्स को प्रचुर अनुदान प्राप्त होने लगा, जिससे इन प्रयोगशालाओं के विकास को गति मिली। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि योजनागत मद में नए पदों का सृजन भी किया जाता है, जबकि आधुनिकीकरण योजना में पदों के सृजन का भार राज्य सरकारों पर है। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि सामान्यतया राज्य सरकारों द्वारा न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं में उनके विकास के समानुपाती आवश्यक पदों का सृजन नहीं किया जाता है। इस प्रकार प्रयोगशालाओं में आधुनिकीकरण के प्रयास का अपेक्षित परिणाम नहीं मिल सका। यह भी उल्लेखनीय है कि आधुनिकीकरण योजना के अन्तर्गत स्वदेशी एवं आयातित उपकरणों के रख-रखाव का भार भी राज्य सरकार पर है। अधिक्तर राज्यों में आयोजनेतर मदों में आवश्यक अनुदान उपलब्ध न होने के कारण बहुमूल्य संवेदन उपकरणों का रख-रखाव सुनिश्चित नहीं हो पाता है।

पिछले कुछ वर्षों से पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो में प्रमुख न्यायालयिक वैज्ञानिक की नियुक्ति के उपरान्त पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो के अधीन केन्द्रीय न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं एवं प्रश्नास्पद प्रलेखों के सरकारी परीक्षक की प्रयोगशालाओं की प्रगति एवं विकास सम्बन्धी कार्यकलापों में सक्रियता बढ़ी है। इनमें शोध एवं विकास की कई योजनाएं प्रचलित हैं, जिनकी प्रगति का मूल्यांकन समय-समय पर पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो द्वारा गठित एक्सपर्ट कमेटी द्वारा किया जाता है। केन्द्रीय न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला, कलकत्ता में डीएनए फिंगर प्रिन्टिंग पर एक आधुनिक प्रयोगशाला स्थापित की गई है। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि हैदराबाद में स्थापित सैन्टर फॉर डीएनए फिंगर प्रिंटिंग एण्ड डायग्नोस्टिक्स में भी आपराधिक मामलों से सम्बन्धित डीएनए फिंगर प्रिंटिंग की सुविधा उपलब्ध है। हैदराबाद तथा चण्डीगढ़ में स्थित केन्द्रीय न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं तथा शिमला, कलकत्ता एवं हैदराबाद में स्थित प्रश्नास्पद प्रलेख के सरकारी परीक्षकों की प्रयोगशालाओं में भी विभिन्न आधुनिक परीक्षण विधियों का विकास किया जा रहा है।

स्वाधीन भारत में न्यायालयिक विज्ञान का विशेष रूप से विकास हुआ है। सभी राज्यों एवं केन्द्र में प्रयोगशालाएं स्थापित कर विकसित की गईं। बारहवीं त्रैवार्षिक इण्टरपोल फारैन्सिक साइंस सिम्पोजियम की आर्गनाइजिंग कमेटी में अन्य विकसित देशों के साथ भारतवर्ष को सदस्य के रूप में चुना जाना इस बात का प्रतीक है कि देश में न्यायालयिक विज्ञान की प्रगति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की हो चली है।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि स्वाधीन भारत में न्यायालयिक विज्ञान का विशेष रूप से विकास हुआ है। सभी राज्यों एवं केन्द्र में प्रयोगशालाएं स्थापित कर विकसित की गई। बारहवीं त्रैवार्षिक इण्टरपोल फारैन्सिक साइंस सिम्पोजियम की आर्गनाइजिंग कमेटी में अन्य विकसित देशों के साथ भारतवर्ष को सदस्य के रूप में चुना जाना इस बात का प्रतीक है कि देश में न्यायालयिक विज्ञान की प्रगति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की हो चली है, किन्तु यह प्रगति सभी प्रयोगशालाओं में एक सी नहीं है। प्रयोगशालाओं की मुख्य समस्याएं हैं-

- प्रयोगशालाओं के बढ़ते हुए कार्यभार, अपेक्षित शोध एवम् विकास कार्य तथा अपराध अन्वेषण में जाँचकर्त्ताओं की अपेक्षित सहायता आदि के अनुरूप जनशक्ति एवं संसाधन का न होना।
- आयातित आधुनिक एवं संवेदनशील उपकरणों के रख-रखाव की उचित व्यवस्था का न होना।
- प्रयोगशालाओं में वेतन-भत्ते एवं सेवा शर्तो तथा कार्य संस्कृति का आकर्षक न होना।

न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं में प्रदर्शो के स्रोत निर्धारण हेतु तुलनात्मक अध्ययन के लिए स्थानीय संगत "डाटाबेस" बनाने, आधुनिक मानक परीक्षण विधियों की निरन्तर उपलब्धता सुनिश्चित करने तथा प्रयोगशालाओं के प्रत्यायन, असंदिग्धता एवं परीक्षण परिणामों की सुनिश्चित गुणवत्ता हेतु गहन प्रयास की आवश्यकता है। किन्हीं कारणोंवश अभी भी न्यायालयिक विज्ञान देश की आपराधिक न्याय व्यवस्था में मुख्यधारा का अंश नहीं बन सका है, विवेचनकर्ताओं द्वारा भी अभी इसका आचरणगत उपयोग नहीं किया जा रहा है।

मेरा पूर्ण विश्वास है कि उपर्युक्त समस्याओं का निराकरण हो जाने पर देश की न्यायालयिक विधि विज्ञान प्रयोगशालाएं विकसित देशों की प्रयोगशालाओं से किसी भी माने में पीछे नहीं रहेंगी। आशा की जाती है कि भविष्य में देश की न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं के गुणात्मक विकास के प्रयास किये जायेंगे ताकि समय की माँग के अनुसार आपराधिक न्याय व्यवस्था में विज्ञान का प्रभावशाली योगदान उपलब्ध हो सके।

फिंगर प्रिन्ट ब्यूरो

व्यक्ति की पहचान के लिए शरीर के विभिन्न अंगों के माप एवं उनकी विशेषताओं पर आधारित "एन्थ्रोपोमैट्री पद्धति" का प्रचलन वर्ष 1879 के आस-पास फ्रान्स में आरम्भ हुआ था। उन्हीं दिनों अंगुलि चिन्हों के बारे में भारत एवं कुछ अन्य देशों में गहन अध्ययन/शोध कार्य किया जा रहा था। कलकत्ता में कार्यरत पुलिस

महानिरीक्षक सर एडवर्ड हैनरी एवं उनके सहयोगी मोहम्मद अजीजुल हक तथा श्री हेमचन्द्र बोस अंगुलि चिन्हों के वर्गीकरण की प्रणाली विकसित करने में सफल हुए। वर्ष 1897 में विश्व का प्रथम फिंगर प्रिन्ट ब्यूरो कलकत्ता में स्थापित हुआ। धीरे-धीरे वर्ष 1910 तक देश के प्राय सभी प्रान्तों में फिंगर प्रिन्ट ब्यूरो स्थापित हो गये। उत्तर प्रदेश में अंगुलि चिन्ह प्रणाली का उपयोग वर्ष 1899 में होने लगा। वर्ष 1906 में फिंगर प्रिन्ट बयूरो सी.आई.डी. से सम्बद्ध कर दिया गया। यह ब्यूरो उ.प्र. पुलिस मुख्यालय इलाहाबाद के भवन में स्थापित था। वर्ष 1968 में घटनास्थल पर छोड़े गये अंगुलि चिन्हों के परीक्षण के लिए लखनऊ में एक अंकीय संग्रहालय (सिंगिल डिजिट ब्यूरो) की स्थापना की गई। वर्ष 1993 में इलाहाबाद से "टेन डिजिट ब्यूरो" भी लखनऊ स्थानान्तरित कर दिया गया।

अन्तर्प्रान्तीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय अपराधों की जाँच एवं अपराधियों की पहचान कार्य में समन्वय स्थापित करने के दृष्टिकोण से वर्ष 1957 में सैन्ट्रल फारैन्सिक इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता में एक सैन्ट्रल फिंगर प्रिन्ट ब्यूरो स्थापित किया गया। बाद में इसे सैन्ट्रल ब्यूरो ऑफ इन्वैस्टीगेशन से सम्बद्ध कर दिया गया। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो की स्थापना के उपरान्त सैन्ट्रल फिंगर प्रिन्ट ब्यूरो को उससे सम्बद्ध कर दिल्ली स्थानान्तरित कर दिया गया।

अपराधों की विवेचना में फिंगर प्रिन्ट का उपयोग सौ वर्ष से किया जा रहा है। इस बीच इस क्षेत्र में काफी शोध एवं विकास कार्य हुआ है। अंगुलि छाप के वर्गीकरण की प्रणाली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, किन्तु कम्प्यूटर के विकास के साथ फिंगर प्रिन्ट के वर्गीकरण के उपरान्त उनकी कोडिंग की प्रणाली विकसित की गई, जिनका संग्रह कम्प्यूटर में होने लगा। इससे प्रश्नास्पद फिंगर प्रिन्ट के मिलान हेतु संग्रहालय से फिंगर प्रिन्ट की खोज में काफी सहायता मिलती थी। कम्प्यूटर में चित्रों को रखने के लिए स्कैनर/डिजिटाइजर एवं डिजिटल इमेज प्रोसेसिंग की उपलब्धता के उपरान्त फिंगर प्रिन्ट के चित्रों को भी कम्प्यूटर में रखा जाने लगा। अब तो "पेपरलेस फिंगर प्रिन्ट ब्यूरो" की भी कल्पना की जा सकती है। यों देश में अभी कम्प्यूटर का उपयोग सभी प्रान्तों में नहीं हो रहा है। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के प्रयास से देश में फिंगर प्रिन्ट के लिए कम्प्यूटर सिस्टम (हार्डवियर एवं साफ्टवेयर) विकसित किये गये किन्तु अत्यधिक मंहगे होने के कारण अभी तक इनका प्रचलन बढ़ा नहीं है। फिंगर प्रिन्ट हेतु अपेक्षाकृत सस्ते कम्प्यूटर सिस्टम भी उपलब्ध हैं, किन्तु वे कदाचित उतने उपयोगी नहीं है। मेरा अपना विचार है कि देश में फिंगर प्रिन्ट के लिए कम्प्यूटर का उपयोग का उचित वातावरण नहीं बन पाया है। प्राय: सभी प्रदेशों में फिंगर प्रिन्ट ब्यूरो के कर्मी कम्प्यूटर के उपयोग के प्रति उपयुक्त नहीं हैं, उन्हें अपना पुराना तरीका ही ठीक लगता है। आशा की जाती है कि भविष्य में धीरे-धीरे नई प्रणाली के प्रति झुकाव होने पर देश के सभी फिंगर प्रिन्ट ब्यूरो में कम्प्यूटर का उपयोग होने लगेगा।

घटनास्थलों पर अदृश्य फिंगर प्रिन्ट को विकसित करने हेतु साइनोएक्रिलेट (सुपरग्लू), लेजर एवं अन्य प्रकाश स्रोतों के विकास उल्लेखनीय हैं। इनके उपयोग का प्रचलन भी अभी अपने देश में अधिक नहीं है। अंगुलि चिन्हों के परीक्षण हेतु अब अच्छे आप्टिकल प्रोजेक्शन सिस्टम उपलब्ध हैं, जिनसे रिज कैरेक्टरिस्टिक्स की खोज एव उनका मूल्यांकन सुविधापूर्वक किया जा सकता है।

फील्ड यूनिट्स

अपराधों की वैज्ञानिक विवेचना में भौतिक सूत्रों की खोज तथा उनका एकत्रण, परीक्षण एवं सुरक्षित अग्रेषण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यदि घटनास्थल पर कोई भौतिक सूत्र छूट जाय तो उसे पुन: प्राप्त करना सम्भव नहीं होता। यदि भौतिक सूत्र एकत्रण एवं अग्रेषण के समय दूषित/मलिन (कन्टामिनेट) हो जाये तो परीक्षण परिणाम दुष्प्रभावित होता है। अत: अपराधस्थलों का निरीक्षण एवं संगत भौतिक सूत्रों की पहचान तथा एकत्रण में विवेचनाकर्ताओं की सहायतार्थ न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं की सचल इकाइयाँ स्थापित की गई हैं। सम्प्रति मद्रास, उड़ीसा, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि प्रदेशों में सचल क्षेत्रीय इकाइयाँ स्थापित हैं। अन्य प्रदेशों में भी इन इकाइयों के गठन का कार्य किया जा रहा है। अधिकतर स्थानों पर इन इकाइयों के सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता है। यह भी देखा गया है कि अधिकतर विवेचनकर्ता अपराधस्थलों की वैज्ञानिक जांच हेतु प्रयोगशाला की क्षेत्रीय इकाइयों के प्रयोग के प्रति उत्सुक नहीं रहते हैं। भौतिक सूत्रों के एकत्रण के अतिरिक्त अपराधस्थलों की फोटोग्राफी/स्कैचिंग भी इन इकाइयों द्वारा की जानी चाहिए। प्रसंगवश यह उल्लेखनीय है कि अब ऐसे कैमरा उपलब्ध है जिनके द्वारा लिया गया चित्र सीधे कम्प्यूटर के माध्यम से देखा जा सकता है तथा अपराध स्थलों की स्केचिंग के लिए भी कम्प्यूटर साफ्टवेयर उपलब्ध हैं। आशा की जाती है कि भविष्य में देश की मोबाइल फील्ड यूनिट आधुनिक प्रकाश स्रोतों एवं कम्प्यूटर आदि के प्रयोग से अपराध अनुसंधान में प्रभावशाली योगदान दे सकेगी।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी विकास के प्रभाव से सभी प्रकार की सुविधाएं एवं साधन उपलब्ध हैं, कदाचित हम मानव सभ्यता के विकास के स्वर्णिम युग से गुजर रहे हैं किन्तु इसके दूसरे पहलू हैं, हमारी मानसिक उलझने एवं तनाव तथा मानवीय मूल्यों में आधारभूत परिवर्तन। अब अपराधों की विवेचना में विज्ञान के साथ मनोविज्ञान का भी महत्व बढ़ेगा। ऐसी परिस्थितियों में अपराध अन्वेषण में मनोवैज्ञानिक तरीकों (पालीग्राफ/लाईडिटेक्टर) का प्रचलन धीरे-धीरे अधिक होगा। देश की कुछ प्रयोगशालाओ में लाई डिटेक्शन अनुभाग स्थापित हैं किन्तु सभी जगह इनका प्रभावशाली उपयोग नहीं हो रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस विषय मे प्रशिक्षित एवं कुशल मनोवैज्ञानिकों की कमी है। यह पूछताछ करने का एक अच्छा साधन है। मानवाधिकार के प्रति जागरूकता के परिवेश में लाईडिटेक्टर का उपयोग भी अन्य विकल्पों में एक है। प्रत्येक परिक्षेत्र मुख्यालयों पर लाईडिटेक्टर स्थापित होने चाहिए। इसी प्रकार आज दूरसंचार के साधन (टेलीफोन आदि) गली-गली, घर-घर में उपलब्ध हैं, इनका प्रसार बढ़ता ही जा रहा है। दूरभाष के माध्यम से धमकी, अश्लील वार्तालाप, ब्लैक मेलिंग आदि के मामलों में भी वृद्धि होने की संभावना है। वायस स्पैक्ट्रोग्राफ की सहायता से "टेपरिकार्डेड" आवाज का विश्लेषण कर संदिग्ध व्यक्ति की पहचान की जा सकती है। अपराध अनुसधान मे उपर्युक्त दोनों विधियो का प्रचलन भविष्य में बढ़ने की सम्भावना है।

शिक्षण संस्थान

विश्वविद्यालयों में न्यायालयिक विज्ञान की शिक्षा का आरम्भ वर्ष 1959 में सागर विश्वविद्यालय द्वारा किया गया, जहाँ स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं हेतु न्यायालयिक विज्ञान पाठ्यक्रम बनाए गए। तत्पश्चात अन्य विश्वविद्यालयों जैसे कर्नाटक विश्वविद्यालय (1964), दिल्ली विश्वविद्यालय (1968), मैसूर विश्वविद्यालय (1972), पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला (1973), मद्रास विश्वविद्यालय (1975), पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (1980) तथा आन्ध्र विश्वविद्यालय (1993) में भी न्यायालयिक विज्ञान का पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया गया। भारत सरकार द्वारा न्यायालयिक विज्ञान में प्रशिक्षण हेतु वर्ष 1972 में अपराधशास्त्र एवं विधि विज्ञान संस्थान की स्थापना नई दिल्ली में की गयी। न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला, पुलिस विभाग, न्यायालय, अभियोजन, कस्टम विभाग, रक्षा विभाग, आदि विभागों के अधिकारियों हेतु इस संस्थान में प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। पड़ोसी देशों के अधिकारी भी यहाँ प्रशिक्षण हेतु आते हैं। इसके अतिरिक्त इस संस्थान में न्यायालयिक विज्ञान के विभिन्न विषयों में शोध एवं विकास कार्य भी किये जाते हैं। निकट विगत में कुछ विश्वविद्यालयों (लखनऊ, हैदराबाद) ने लॉ-कालेज के पाठ्यक्रम में विधि विज्ञान विषय रखने की पहल की है। यह कदम सामयिक एवं अत्यन्त औचित्यपूर्ण है। आज के युग में विधि के स्नातकों के लिए न्यायालयिक विज्ञान का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। सभी विश्वविद्यालयों के लॉ कालेज के पाठ्यक्रम में न्यायालयिक विज्ञान सम्मिलित किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, प्रान्तीय पुलिस अकादमी एवम् पुलिस प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में न्यायालयिक विज्ञान भी सम्मिलित किया गया है किन्तु अधिकतर प्रदेशों में यह एक औपचारिकता मात्र ही प्रतीत होती है। कहीं-कहीं इसे गम्भीरता से लिया गया है एवं वहाँ नियमित रूप से प्रशिक्षण हेतु वरिष्ठ वैज्ञानिक नियुक्त हैं। न्यायालयिक विज्ञान के प्रभावशाली उपयोग हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रयोगशालाएं ही आवश्यक नहीं हैं बल्कि पुलिस अधिकारियों एवं न्यायिक अधिकारियों को न्यायालयिक विज्ञान की जानकारी भी अति महत्वपूर्ण है। अतः पुलिस एवम् न्यायिक प्रशिक्षण संस्थानों में न्यायालयिक विज्ञान के अध्ययन की सुदृढ़ व्यवस्था अपरिहार्य है।

व्यावसायिक परिषद्

वर्ष 1961 में तत्समय कार्यरत कुछ न्यायालयिक वैज्ञानिक, रासायनिक परीक्षक, मेडिकोलीगल विशेषज्ञ, पुलिस अधिकारी, न्यायाधीश एवं अन्य द्वारा एक सम्मेलन में इंडियन एकेडमी ऑफ फारैन्सिक साइंसेज नामक एक व्यावसायिक परिषद् बनाने का निर्णय लिया। इस परिषद् के गठन का मुख्य उद्देश्य यह था कि न्यायालयिक विज्ञान के अध्ययन एवं इसकी उपयोगिता के स्तर को बढाने में सहायता मिले, देश के वैज्ञानिकों द्वारा न्यायालयिक विज्ञान एवं इससे सम्बन्धित विषयों पर किये गये शोध एवं विकास कार्य प्रकाशित किये जायं, समय-समय पर वैज्ञानिक गोष्ठियाँ तथा आवश्यकतानुसार विशिष्ट विषयों पर सिम्पोजियम एवं सेमिनार आदि आयोजित किये जायें, देश एवं विदेश के अन्य सम्बन्धित संस्थानों से सम्पर्क स्थापित किये जायं। सरकारी एवं अन्य संस्थानों द्वारा संदर्भित मामलों में राय देना एवं मार्गदर्शन प्रदान करना भी इसका उद्देश्य था। इस परिषद् के प्रथम अध्यक्ष स्वर्गीय श्री बी.एन. मलिक, निदेशक, इन्टेलीजेन्स ब्यूरो, भारत सरकार, नई दिल्ली थे।

इंडियन एकेडमी ऑफ फारैन्सिक साइंसेज द्वारा देश के विभिन्न शहरों में समय-समय पर वैज्ञानिक गोष्ठी/ सेमिनार/ सिम्पोजियम आयोजित किये जाते हैं। एकेडमी द्वारा "जर्नल ऑफ इंडियन एकेडमी ऑफ फारैन्सिक साइंस" भी प्रकाशित किया जाता है, जिसमें वैज्ञानिकों के शोध एवं विकास कार्य प्रकाशित होते हैं। यह जर्नल विदेशों के न्यायालयिक वैज्ञानिकों एवं पुस्तकालयों द्वारा भी मंगाया जाता है। इसमें प्रकाशित शोध पत्र का सारांश कई अन्तर्राष्ट्रीय जर्नलों में भी उद्धृत किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त मद्रास में एक "फारैन्सिक साइंस सोसायटी ऑफ इंडिया" का गठन वर्ष 1979 में किया गया था। उक्त सोसायटी द्वारा भी एक जर्नल प्रकाशित किया गया था तथा समय-समय पर वैज्ञानिक गोष्ठी/ सेमिनार/ सिम्पोजियम आयोजित किये जाते थे। पिछले कुछ वर्षों से इस सोसायटी की सक्रियता में काफी कमी आई है। राष्ट्रीय स्तर के उक्त व्यावसायिक परिषदों के अतिरिक्त देश में दो-एक स्थानों पर छोटे-छोटे व्यावसायिक परिषदों का गठन यदा-कदा किया गया, जो स्थानीय रूप से ही सक्रिय रहे।

नागरिकों में न्यायालयिक विज्ञान के बारे में जागरूकता पैदा करने तथा अपराध स्थलों आदि की वांछित सुरक्षा के बारे में जानकारी का प्रसार करने में व्यावसायिक परिषद् अत्यन्त उपयोगी हो सकते हैं। इंडियन एकेडमी ऑफ फारैन्सिक साइंसेज को और सुदृढ बनाने की आवश्यकता है ताकि यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की हो सके। किसी भी व्यवसाय की प्रगति एवं विकास में व्यावसायिक परिषद् की अहम् भूमिका होती है। यदि अकादमी की सक्रियता बढती है तो यह समाज एवं व्यवसाय के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन कर सकेगी।

उक्त व्यावसायिक परिषदों के अतिरिक्त शोध एवं विकास कार्यों के प्रस्तुतीकरण एवं विचार-विमर्श हेतु अन्य कई वैज्ञानिक गोष्ठियाँ, सिम्पोजियम तथा सेमिनार आयोजित किये जाते हैं। वर्ष 1950 में ऑल इंडियन आइडेन्टिफिक्रेशन आफिसर्स कान्फ्रेन्स का आयोजन आरम्भ हुआ। पहला कान्फ्रेन्स पूना में आयोजित किया गया था। इसका आयोजन बारी-बारी अन्य प्रदेशों में होता रहा। डाकूमेन्ट एक्जामिनर्स का कान्फ्रेन्स वर्ष 1970 में आरम्भ किया गया। वर्ष 1973 में यह निर्णय लिया गया कि आइडेन्टिफिकेशन आफिसर्स कान्फ्रेन्स एवं डाकूमेन्ट एक्जामिनर्स कान्फ्रेन्स को एकीकृत कर भविष्य में द्विवार्षिक "ऑल इण्डिया फारैन्सिक साइंस कान्फ्रेन्स" आयोजित किये जायेंगे। प्रथम द्विवार्षिक कान्फ्रेन्स 1973 श्रीनगर में आयोजित किया गया। तब से विभिन्न प्रान्तो में इसका आयोजन किया जाता रहा है। गत बार यह कान्फ्रेन्स 1995 में शिमला में आयोजित किया गया था। केन्द्रीय एवं राज्य न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाओं तथा अन्य सम्बन्धित संस्थानों के निदेशकों का द्विवार्षिक सम्मेलन प्रथम बार वर्ष 1974 में दिल्ली में आयोजित किया गया था। गत बार यह सम्मेलन वर्ष 1996 मे चण्डीगढ में आयोजित किया गया था। इनके अतिरिक्त इण्डियन एकेडमी ऑफ फारैन्सिक मेडिसिन एवं ऑल इण्डिया पुलिस साइंस कांग्रेस के अधिवेशनों में भी फारैन्सिक साइंस के विषयों पर शोध पत्र प्रस्तुत करने एवं विचार-विमर्श करने के अवसर प्राप्त होते हैं।

कभी-कभी न्यायालयिक विज्ञान के समर स्कूल एवं विन्टर स्कूल भी आयोजित किये जाते हैं।

एक बहुविषयीय प्रयुक्त विज्ञान होने के कारण न्यायालयिक विज्ञान में प्रयुक्त विधियाँ विभिन्न क्षेत्रों में हुए शोध एवं विकास कार्य से प्रभावित होती हैं, अत: देश की अन्य प्रयोगशालाओं, विश्वविद्यालयों, वैज्ञानिक संस्थानों आदि में कार्यरत वैज्ञानिकों एवं न्यायालयिक वैज्ञानिकों के बीच परस्पर विचार-विमर्श के अवसर प्रदान करने के दृष्टिकोण से इंडियन साइंस कांग्रेस ऐसोसिऐशन के इन्दौर में आयोजित 78वें अधिवेशन (1991) में यह निर्णय लिया गया कि साइंस कांग्रेस अधिवेशनों में फारैन्सिक साइंस का भी "फोरम" होगा। वर्ष 1992 से प्रतिवर्ष साइंस कांग्रेस अधिवेशनों में "फोरम ऑन फारैन्सिक साइंसेज" का आयोजन किया जाता है।

शासनेतर विशेषज्ञ

सरकारी प्रयोगशालाओं के अतिरिक्त प्रश्नास्पद प्रलेखों के परीक्षण एवं फिंगर प्रिन्ट के परीक्षण हेतु प्राइवेट एक्सपर्ट प्राय: सभी बड़े शहरों में हैं। धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ती जा रही है, एवं छोटे-छोटे शहरों में भी शासनेतर न्यायालयिक विज्ञान विशेषज्ञ बढ़ते जा रहे हैं। कुछ सरकारी प्रयोगशालाओं से सेवा निवृत्त वैज्ञानिक भी निजी तौर पर परीक्षण कार्य करने लगे हैं। इस प्रकार देश में न्यायालयिक विज्ञान के शासनेतर विशेषज्ञों की संख्या काफी बड़ी हो चली है। इसमें से कुछ को छोड़कर अधिकतर विशेषज्ञ प्रशिक्षित नहीं हैं, और न ही इनके पास आधुनिक उपकरण उपलब्ध हैं। न्यायालयों में वैज्ञानिक साक्ष्यों की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि शासनेतर विशेषज्ञों की विशेषता की परीक्षा ली जाये एवं उनकी योग्यता को प्रमाणित किया जाये। इनका पंजीकरण भी किसी व्यावसायिक परिषद् में होना चाहिए तथा उनके लिए नियंत्रक नियम भी बनाने चाहिए। यह कार्य इंडियन एकेडमी ऑफ फारैन्सिक साइंसेज द्वारा किया जा सकता है। विकसित देशों में शासनेतर न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशालाएं स्थापित हो रही हैं। भविष्य में इस देश में भी ऐसी निजी प्रयोगशालाएं स्थापित हो सकती हैं, जिनमें आधुनिक परीक्षण विधियाँ प्रयुक्त होंगी। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए शासनेतर विशेषज्ञों/ प्रयोगशालाओं के प्रत्यायन (एक्रीडिटेशन) की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। यदि समय से यह व्यवस्था नहीं की गई तो न्यायालयों में वैज्ञानिक साक्ष्यों की गुणवत्ता अत्यन्त दुष्प्रभावित होगी एवं वैज्ञानिक साक्ष्यों का दुरुपयोग भी बढ़ेगा। इस दिशा में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

निदेशक, विधि विज्ञान प्रयोगशाला, उ.प्र.,
महानगर, लखनऊ-226 006